

बनता है तो यह तो पंचमकाल है। भूले बिना छूटकारा नहीं है। चक्ररत्न प्रगट हुए होते हैं वह सब चले जाते हैं। उनकी ऋद्धियाँ जो चक्रवर्ती के उदयसे होती है वह ऋद्धियाँ चली जाती हैं, तो उनके कुटुम्बीओं को कैसा होता होगा? संसार तो ऐसा ही है। सब वैराग्य धारणकर चल देते हैं। सब भूलने जैसा है। इस मनुष्यजीवन में गुरुदेव मिले यह याद करने जैसा है।

मुमुक्षु :- अभी तो आपकी शरण है, यह हमारा महाभाग्य है।

समाधान :- बदले बिना छूटकारा नहीं है। गुरुदेवने जो धर्म कहा है, उस धर्म पर ही चित्त लगाना, (बाकी सब) भूलने जैसा है। संसार तो ऐसा ही है। आदमी जब चला जाता है तब उसके गुण याद आते हैं। गुण याद आये लेकिन फिर दुःख लगानेसे कोई लाभ नहीं होता, भूले बिना छूटकारा नहीं।

मुमुक्षु :- आपकी वाणी सुनकर सुख-साता होती है।

समाधान :- पलटे बिना छूटकारा नहीं है। कोई उपाय है? उसका कोई उपाय है? चाहे जितना दुःख हो, चाहे जितने गुण याद आये, तो भी उसका कोई उपाय है? जो मनुष्य जाता है वह कोई उस स्वरूप में, उसप्रकारसे कोई आता है? कोई आता नहीं। इसलिये राग छोड़कर, विचारकरके बदल देना एक ही उपाय है। उसका कोई उपाय नहीं है। चाहे जितनी याद आये, जो जाता है उसका भव दूसरा हो जाता है। देव में जाता है तो वह मनुष्य उसही स्वरूप में वापस नहीं आता। चतुर्थ काल हो तो ऊपरसे देव आते हैं, देव के रूप में। लेकिन वह मनुष्य जिस स्वरूप में था उसही स्वरूप में कोई आता नहीं।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-५A

मुमुक्षु :- ज्ञान का जो जानने का प्रकार है उसका निषेध करने में आये तो उसमें लाभ क्या होता है या नुकसान क्या होता है?

समाधान :- जो दृष्टि का विषय है वह सबको गौण करता है। एक पारिणामिकभाव को ही ग्रहण करता है, दृष्टि के विषयमें। एक को, मुख्य एक को ग्रहण करता है, बाकी सब गौण करता है। और ज्ञान है वह स्वयं अखण्ड को ग्रहण करता है और जो भेद है उसको भी ग्रहण करता है। अब, यदि उसका निषेध-ज्ञान का निषेध ही करे, मात्र दृष्टि को रखे तो दृष्टि हो नहीं सकती। दृष्टि के साथ ज्ञान हो तो ही दृष्टि सम्यक् होती है। दृष्टि के साथ ज्ञान हो तो ही साधना हो सकती है। दृष्टि की मुख्यतासे साधना होती है, लेकिन यदि ज्ञान नहीं रखे और अकेली दृष्टि (रखे, तो) अकेली दृष्टि हो नहीं सकती। अकेली दृष्टि हो तो दृष्टि सम्यक् होती ही नहीं। दृष्टि मिथ्या होती है। उसको नुकसान वह होता है।

लाभ यह होता है कि दृष्टि सम्यक् हो उसके साथ ज्ञान सम्यक् हो तो उसकी साधना भी सम्यक् प्रकारसे यथार्थ होती है। ज्ञान का बिलकूल निषेध करे तो दृष्टि की सम्यक्ता

रह सकती नहीं। दृष्टि के साथ ज्ञान होता है, ज्ञान के साथ दृष्टि होती है। दोनों साथ में हो तो ही दोनों सम्यक् होते हैं। अकेली दृष्टि हो तो एकांत (हो जाता है)। मुख्य एक द्रव्य ही है और पर्याय कुछ है ही नहीं, दृष्टि अपेक्षासे आत्मा पूर्ण है। आत्मा में कोई विभाव नहीं है, आत्मा में कोई भेद नहीं है। दृष्टि तो एक अपना अस्तित्व है उसको ही ग्रहण करती है। बाकी जो भी अन्दर अनेक जात के प्रकार (हैं), अनेकान्तमय अनन्त धर्मोंसे, अनन्त गुणोंसे भरा है, वह कोई भी भेद दृष्टि में आते नहीं। दृष्टि तो एक को ही ग्रहण करती है। एक मुख्य (करे) और अन्य सब का निषेध करे तो ऐसा वस्तु का स्वरूप हो नहीं सकता। वस्तु का स्वरूप यथार्थ रूपसे साध नहीं सकते। तो दृष्टि भी सम्यक् नहीं है। उसका निषेध करे तो दृष्टि भी जूठी है।

ज्ञान सम्यक् कब कहलाता है? कि ज्ञान अभेद को ही ग्रहण करे। दृष्टि का विषय है वैसा ही ज्ञान ग्रहण करे और ज्ञान पर्याय को भी ग्रहण करे, ज्ञान द्रव्य को भी ग्रहण करे, ज्ञान अपूर्ण-पूर्ण पर्याय को भी ग्रहण करे और ज्ञान, शाश्वत द्रव्य है उसमें कोई विभाव नहीं है, आत्मा में कोई भेद नहीं है, सब ज्ञान ग्रहण करता है। इसलिये ज्ञान दोनों पहलूओं को ग्रहण करे तो ज्ञान सम्यक् है और दृष्टि, उसके साथ रही दृष्टि भी सम्यक् है। अकेली दृष्टि रखे और ज्ञान को निकाल दे तो दृष्टि सम्यक् नहीं है। गलत होता है, एकान्त होता है। दोनों पहलू यदि ज्ञान के साथ नहीं हो तो दृष्टि जूठी होती है, नुकसान है, साधना होती नहीं। मोक्षमार्ग प्रगट नहीं होता। मुक्ति की पर्याय प्रगट नहीं होती, कुछ होता नहीं। उसकी साधना यथार्थ नहीं होती। ऐसे ही किया करे कि आत्मा तो एक पारिणामिभाव है, आत्मा तो शाश्वत है, आत्मा में कुछ नहीं है। ये विभाव जड़ के हैं, आत्मा तो ज्ञायक है। आत्मा एक जाननेवाला है, उसमें कुछ नहीं है, कुछ नहीं है। ऐसा किया करे लेकिन साधन अन्दर भेद करके भिन्न हो तब यथार्थ होता है। भिन्न हुए बिना आश्रय कैसे हो? अन्दर भिन्न पड़े तो आत्मा का आश्रय आये तो उसमें पर्याय की शुद्धि होती है। भिन्न हुए बिना ऐसे ही (कहता) रहे तो गलत है।

मुमुक्षु :- भिन्न होने में ज्ञान विशेष है, परिणमन में?

समाधान :- दृष्टि मुख्य और ज्ञान भी साथ में है, दोनों साथ में है। दोनों की अपेक्षासे दोनों होने चाहिये। दोनों साथ हो तो होता है, ज्ञान मुख्य और दृष्टि मुख्य, दोनों साथ में होते हैं। वस्तु स्वरूप जानने में पहले ज्ञान होता है। ज्ञान यथार्थ जाने। दृष्टि प्रगट होती है तब साधना में दृष्टि मुख्यरूपसे काम करती है, लेकिन वह दृष्टि कैसी? ज्ञान सहित की दृष्टि। वह दृष्टि ऐसी होती है। ज्ञान सहित की दृष्टि। ज्ञान बिना की अकेली दृष्टि वह दृष्टि यथार्थ नहीं है, जूठी है।

मुमुक्षु :- यानी कि निर्विकल्प दशा हो या सविकल्प दशा हो, दोनों वक्त ऐसी ही परिस्थिति होती है ?

समाधान :- निर्विकल्प दशा में दृष्टि मुख्य रहती है और ज्ञान सब जानता है। ज्ञान स्वयं जो अभेद एक वस्तु है उसे भी जानता है और पर्याय के वेदन को भी ज्ञान जानता है। दोनों (भाव) निर्विकल्प दशा में ज्ञान जानता है और दृष्टि एक अभेद को ग्रहण करती है। निर्विकल्पपने दृष्टि इसप्रकार परिणमती है। ज्ञान भी सहज बिना विकल्प किये परिणमता है। पर्याय का वेदन है और द्रव्य जैसा है वैसा सब ज्ञान में सहज जानने में आता है, बिना विकल्प किये। और बाहर आये तो भी उसकी साधना में दृष्टि एक द्रव्य को मुख्य रखती है, एक शाश्वत द्रव्य, जिसमें कोई पर्याय का भेद नहीं है, कोई साधना की पर्याय का भेद नहीं है, कोई भेद नहीं है। ऐसे दृष्टि एक द्रव्य का आश्रय करती है। और उसके साथ ज्ञान सब विवेक करता है कि मैं भिन्न हूँ, यह विभाव मेरा स्वरूप नहीं है, मेरा स्वरूप यह है। निश्चयसे एक द्रव्य शाश्वत है उसे जानता है, भेदज्ञान करे उसे जानता है, सब ज्ञान जानता है। ज्ञान, दृष्टि उसके साथ परिणति ऐसी रहती है। भेदज्ञान की आंशिक परिणति सम्यग्दर्शन में अलग रहती है। उतना स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट होता है। अनन्तानुबंधी कषाय टलता है। जो मात्र दृष्टि, दृष्टि ऐसा कहता रहता है, ज्ञान का एकदम निषेध करता है तो दृष्टि जूठी है, यथार्थ नहीं है।

मुमुक्षु :- माताजी! निर्विकल्पता के समय पुरुषार्थगुण की प्रधानतासे पूर्णरूपसे जाने या अल्पतारूप जाने? समाधान :- जैसा है वैसा जाने। जैसा द्रव्य-वस्तुस्थिति (है), उसमें कोई विभाव नहीं है, उसमें अन्य कुछ नहीं, वस्तुस्थिति ऐसी है। और निर्विकल्प दशा आंशिकरूपसे प्रगट (हुई है)। जैसा है वैसा जानता है, उसमें विकल्प नहीं है। निर्विकल्परूपसे अल्प को अल्प जानता है, द्रव्य अपेक्षासे पूर्ण है ऐसे जानता है। पूर्ण माने? द्रव्य में कोई विभाव नहीं है। द्रव्य एक शुद्ध है, ऐसा जानता है। पूर्ण अर्थात् पर्याय में पूर्ण नहीं है। जैसा है वैसा जानता है। जैसा है वैसा उसे वेदन है। थोड़ा-सा भी ज्ञान में गलत नहीं होता। (यदि है) तो ज्ञान सम्यक् नहीं है। जैसा है वैसा ज्ञान बराबर जानता है। जितना है उतना जानता है। जिस भूमिका में है वैसा जानता है। ज्ञान एक विवेक करनेवाला तुलनात्मक है। जैसे तराजू में हीरे को तोलते हैं, वह ज्ञान तो स्थूल है, ज्ञान बराबर जैसा है वैसा जाननेवाला है।

मुमुक्षु :- तराजू के काँटे की भाँति।

समाधान :- हाँ, उसमें भूल हो तो सब में भूल है। आश्रय द्रव्य का दृष्टि में है। निर्णय जो किया विचार करके, दृष्टिने द्रव्य का आश्रय लिया वह आश्रय वैसे ही रहता है। आश्रय किसका लिया है और वस्तु कैसी है और किस स्वरूप में है, सबको ज्ञान जानता है। वस्तु पूर्णरूपसे कैसी है, अल्पता कितनी है और कैसे पूर्ण हुआ जाता है और पूर्ण की स्थिति कैसी होती है, अल्पता की क्या होती है, उन सबको साधकदशा में जानता है।

मुमुक्षु :- माताजी! आप दृष्टि कहते हो लेकिन दृष्टि का रूप समझ में नहीं आता

है। ज्ञान तो बराबर है, ख्याल में आता है, आप ज्ञान के सब पहलूओंसे बात करते हो, लेकिन दृष्टि इसप्रकार एक को स्वीकार करती है, मात्र अस्तित्व को ग्रहण (करती है), लेकिन दृष्टि क्या, यही बराबर ख्याल में नहीं आता।

समाधान :- एक ध्येय रखा है, द्रव्य का आश्रय लिया है। दृष्टांत में क्या होता है कि कोई आदमी कार्य करता हो और ध्येय एक हो कि मेरा यह ध्येय है। यह गाँव लक्ष्य में लिया है। उसमें तो गाँव भिन्न और बाकी सब भिन्न है। उसे ध्येय तो एक ही है कि यह वस्तु है, द्रव्य यह है, इस द्रव्य को स्वयं उसकी दृष्टि में लेकर उसका दृष्टिबिंदु बराबर द्रव्य पर है। हाथ में उसे लिया है और कार्य, द्रव्य में जो अशुद्धि पर्याय अपेक्षासे है वह पूरी करनी है। ज्ञान में है। कार्य करनेवाले मनुष्य का ध्येय, कार्य का हेतु क्या है, उसकी दृष्टिने द्रव्य पर बराबर आश्रय लिया है। लेकिन वह दृष्टिबिंदु तो बाहर का है।

यहाँ तो एक वस्तु को हाथ में ली है कि यह वस्तु मूल स्वभावसे तो पूर्ण है लेकिन उसे साधनी है, पर्याय में न्यूनता है। पानी का स्वभाव शीतल है, लेकिन उसकी शीतलता कैसे प्रगट करनी वह कार्य ज्ञान में लिया है और उस कार्य को ज्ञान में लेकर फिर क्रिया में, परिणति में उसप्रकारसे करता है। ज्ञान जानता है, परिणति पुरुषार्थ उसप्रकार स्वयं की ओर मोड़ता है। और प्रयोगसे पानी शीतल है, कीचड़से मलिन हुआ है और स्वच्छ करना है, लेकिन स्वभावसे निर्मल है। पानी पर दृष्टि (है)। वैसे यह वस्तु, वहाँ तो पानी एक अलग हुआ, यह तो एक वस्तु है, उस वस्तु को जान ली, वस्तु को हाथ में ली है। दृष्टि में यानी उसके दृष्टिबिंदु में ग्रहण कर ली है कि यही वस्तु है। स्वयं ही है, स्वयं कोई अलग नहीं है।

उसे यदि वह दृष्टि में आया नहीं हो, उतना निश्चय-नक्की है कि यही द्रव्य है और यही वस्तु है, इस वस्तु को ग्रहणकर खुद ज्ञानमें जानकर आगे कार्य करता है। उसकी पूर्णता, अल्पता और शुद्धता, सबकी ज्ञान में तुलना करके सब जानता है। उसप्रकारसे उसका कार्य होता है। दृष्टि यानी एक ध्येय को ग्रहण किया है। आत्मा को हाथ में लिया है।

स्फटिक हो, कोई वस्तु हो उसकी निर्मलता कैसे हो? कोई वस्तु मलिन हुई हो वह निर्मल (कैसे हो)? कपड़ा मलिन है, उसे धोना पड़े। कपड़ा स्वभावसे निर्मल है। वैसे स्वयं ही है, ये सब तो बाहर के दृष्टांत है।

मुमुक्षु :- इसप्रकारसे द्रव्य को अथवा ध्रौव्य भाव को..

समाधान :- स्वयंने ग्रहण किया है। जिस पर दृष्टि को स्थापित की है कि यह वस्तु है। उसका स्वभाव तो पूर्णतः शीतल और पूर्णतः ज्ञानसे भरपूर, आनंदसे भरपूर पूर्ण है। उसमें उसके मूल में कुछ अशुद्धता या उसके मूल में कोई उष्णता कि आकूलता नहीं है। मूल उसका अंतःतत्त्व तो शुद्ध है। लेकिन उसे प्रगट शुद्धता करने हेतु किस अपेक्षासे अशुद्धता है, यह सब ज्ञान जानता है। ज्ञान शुद्धता को जानता है, ज्ञान अशुद्धता को जानता है,

दोनों को जानता है। इसप्रकार कार्य स्वयं पुरुषार्थसे स्वयं की ओर झुकता है, भेदज्ञान करके। भेदज्ञान द्वारा विभावसे न्यारा होता है। मैं उससे भिन्न हूँ। उससे न्यारा होता है, अमुक प्रकारसे। फिर विशेष होता जाता है। गृहस्थाश्रम में अमुक प्रकारसे न्यारा होता है। दृष्टि अपेक्षासे न्यारा है कि मैं तो यही हूँ, यह नहीं। जितना अपना आलम्बन आया उतना न्यारा हो गया है।

मुमुक्षु :- जिस ज्ञान में अशुद्धता ख्याल में आयी कि यह अशुद्धता है। मेरा पूर्ण स्वरूप ऐसा है। इसप्रकार जिस ज्ञान में अशुद्धता में जानने में आयी उसे फिर अशुद्धता रहे कैसे?

समाधान :- जानने के साथ ही जाना इसलिये कार्य हो नहीं जाता। यह अशुद्धता है, यह शुद्धता है। मेरा स्वभाव शुद्ध है, पर्याय में अशुद्धता है। ऐसा जाना, तो जानने के साथ ही कार्य नहीं होता। कार्य अभी (बाकी है)। वह जाना, अमुक प्रकारसे भिन्न होता है। उसने जाना वह यथार्थ जाना है। दृष्टि स्वयं आत्मा का आश्रय लेकर यह आत्मा है, यह विभाव है, उस आत्मा का आश्रय लेकर बराबर जाना है। इसलिये अमुक प्रकारसे न्यारा होता है। ऐसे जानने के साथ अमुक कार्य हो जाता है, लेकिन विशेष कार्य करने में देर लगती है। जानने के साथ ही तुरंत अन्दर में स्थिर हो जाये ऐसा बनता है। उसे लीनता होने में देर लगती है। इसलिये (अमुक प्रकार) गृहस्थाश्रम में होता है। फिर उसे विशेष पुरुषार्थ होता है। अंतरमेंसे सब त्याग हो गया कि यह सब मेरा स्वभाव नहीं है। यह सब कब छूटे? भावना ऐसी है लेकिन पुरुषार्थ इतना चलता नहीं है। जानने के साथ ही तुरंत नहीं हो जाता। चारित्र की दशा अंतर की (बाकी रहती है)। फिर बाहर आते हैं, अंतर और बाहर में उसप्रकारके शुभभाव उसके साथ होते हैं, इसलिये उस सम्बन्धित त्याग होता है। फिर लीनता बढ़ते.. बढ़ते.. बढ़ते.. चारित्र दशा अंतर में होती है इसलिये बढ़ जाता है। मात्र ज्ञानमात्रसे कहने में आता है वह ज्ञान किसप्रकार का? कि, वह ज्ञान लीनतापूर्वक का ज्ञान होता है। लीनतापूर्वक का ज्ञान हो तो ज्ञानमात्रसे हो जाता है, मोक्ष हो जाता है। भेदज्ञानसे सिद्ध होता है। लेकिन वह ज्ञान भेदज्ञान की उग्रता (होती है तब होता है)। उस उग्रता में चारित्र अन्दर साथ में आ जाता है। और यह जाननेमात्रसे लीनता नहीं हो जाती।

मुमुक्षु :- जिस ज्ञान में अशुद्धता अशुद्धतारूपसे जानने में आयी और राग ... यह मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा भी जानने नक्की किया, तो भी अशुद्धता .. उतना चारित्र तो हुआ है।

समाधान :- थोड़ा तो हुआ है।

मुमुक्षु :- तो फिरसे वैसे राग में क्यों फँसता है?

समाधान :- उसके पुरुषार्थ की मन्दता है। उसे ऐसा होता है कि इस क्षण यह यदि छूट जाये तो मुझे कुछ नहीं चाहिये। लेकिन उतना पुरुषार्थ उससे हो नहीं पाता। एकदम जोरदार वैसी पुरुषार्थ की उग्रता होती नहीं। श्रद्धा हुई, ज्ञान हुआ, जाना, अमुक प्रकारसे न्यारा हुआ, स्वानुभूति हुई, बाहर आया, भेदज्ञान की धारा वर्तती है, भिन्न हूँ, भिन्न हूँ ऐसी